बिज़नेस स्टैंडर्ड
वर्ष 12 अंक 43

प्रतिगामी कदम

सर्वोच्च न्यायालय ने केरल उच्च न्यायालय द्वारा कर्मचारी भविष्य निधि संगठन (ईपीएफओ) के खिलाफ दिए गए निर्णय को बरकरार रखा है। इस निर्णय के फलस्वरूप पेंशन के आकलन से संबंधित कुछ संशोधन को निरस्त कर दिया गया था। इससे ऐसी स्थिति निर्मित होगी जिसके तहत उन लोगों की पेंशन में 1000 प्रतिशत तक का इजाफा हो सकता है जो अपेक्षाकृत अच्छा वेतन पाने वाले हैं और जिन्होंने कई वर्षों तक नौकरी की है। जाहिर सी बात है कि यह भविष्य निधि की उस प्रकृति के विरुद्ध है जिसके तहत उसने हमेशा उन लोगों की बचत और सेवानिवृत्ति में मदद की है जो संगठित क्षेत्र के निचले दायरे से आते हैं। अदालत ने भले ही इस प्रतिगामी आदेश को बरकरार रखा हो लेकिन सवाल यह है कि इस भारी-भरकम पेंशन के भुगतान के लिए धन कहां से आएगा। अदालत ने इस सवाल पर कतई ध्यान नहीं दिया है।

यह विधायी हस्तक्षेप के बढ़ने का उदाहरण है। पेंशन योजना का ढांचा ऐसा है कि योजना का मुनाफा और उसका स्थायित्व आदि ऐसे प्रश्न हैं जिनका निर्धारण कार्यपालिका द्वारा किया जाता है। कार्यपालिका को ही यह तय करना होता है कि सब्सिडी और करों का समुचित वितरण हो। राज्य द्वारा गारंटी प्राप्त पेंशन फंड कुछ और नहीं बल्कि राजकोषीय निर्णयों का ही एक उपवर्ग है और इसे तमाम देशों में कार्यपालिका के पास ही रहने देना चाहिए। न्यायपालिका नहीं बल्कि कार्यपालिका वह जगह है जहां यह निर्णय होना चाहिए कि गारंटी वाली पेंशन योजना से किसे लाभ मिलना चाहिए। उदाहरण के लिए ईपीएफओ की व्यवस्था अनिवार्य तौर पर संगठित क्षेत्र के कामगारों तक सीमित है और संगठित क्षेत्र के रोजगार के छोटे आकार और मोलतोल की उसकी विसंगतिपूर्ण क्षमता के साथ उसे बचत का सर्वश्रेष्ठ स्वरूप नहीं माना जा सकता है।

जब तक कि मूल अधिकारों की अनदेखी नहीं की जा रही हो, कर राजस्व का प्रयोग सर्वोत्कृष्ट न्याय सुनिश्चित करने में किस प्रकार किया जाए यह तय करने का निर्णय भी पूरी तरह कार्यपालिका का ही होना चाहिए।

उदाहरण के लिए अगर कार्यपालिका को यह प्रतीत होता है कि स्वास्थ्य सुविधाओं की तुलना में पेंशन कर राजस्व का कम प्रभावी इस्तेमाल है तो यह उसका विशेषाधिकार है। संगठित क्षेत्र के लिए वैसे भी देश में कई बचत योजनाएं संचालित हैं। वहीं दूसरी ओर स्वास्थ्य सुविधा क्षेत्र संसाधनों की कमी से जूझ रहा है, और यह बात कई उम्रदराज लोगों को भारी पड़ती है। जो कर्मचारी संगठित अर्थव्यवस्था से बाहर हैं, उन्हें समुचित बचत योजनाओं तक पहुंच बनाने के लिए भी संघर्ष करना पड़ता है। जबकि ये योजनाएं राज्य द्वारा गारंटीड भी हैं और वे एक न्यूनतम प्रतिफल सुनिश्चित करती हैं। देश में पिरामिड योजनाओं और चिटफंड योजनाओं की लोकप्रियता की एक वजह यह भी है। न्यायपालिका स्वाभाविक तौर पर इन महत्त्वपूर्ण प्रश्नों में से किसी को उठा नहीं सकता। यही वजह है कि कार्यपालिका को ऐसे निर्णय लेने देना उचित है।

यह बात भी ध्यान देने वाली है कि सरकार ने पहले ही ईपीएफओ का एक बेहतर विकल्प सुझाया है जो उच्च बचत वालों के लिए है। इस योजना का नाम राष्ट्रीय पेंशन योजना (एनपीएस) है। ईपीएफओ खातों को एनपीएस में स्थानांतरित कर दिया जाना चाहिए था। पेंशन योजनाओं को समय पर भुगतान हो सके, इसके लिए व्यक्तिगत भुगतान पर आधारित पात्रता योजनाओं का विचार अच्छा है लेकिन इन्हें सेवानिवृत्ति खातों के इर्दगिर्द तैयार किया जाना चाहिए। बहरहाल, अगर अदालतों को यह लगता रहेगा कि वे हस्तक्षेप करके इन सुधारों को रोक सकते हैं तो सरकार ऐसे जरूरी सुधारों के साथ आगे कैसे बढ़ पाएगी? किसी कर्मचारी की आय का कितना हिस्सा अनिवार्य तौर पर बचत में जाना चाहिए, इसका निर्धारण अदालतों के मनमाने निर्णय से नहीं बल्कि तार्किक विश्लेषण से किया जाना चाहिए।

अजय मोहंती

राज्यों के नेताओं का है यह राष्ट्रीय चुनाव

आज देश में करीब 20 मजबूत क्षेत्रीय नेता हैं। कोई भी ऐसा राष्ट्रीय नेता नहीं है जो उनके मत छीन सके। मोदी सात राज्यों से ज्यादा में भाजपा को बढ़त नहीं दिला सकते।

अगर आप समझना चाहते हैं कि भारत को दो तरह से देखा जा सकता है तो आपको दिल्ली से बाहर जाना होगा। एक तरीका है दिल्ली और अन्य हृदय प्रदेशों में बैठकर देश के बाकी हिस्सों को देखना और दूसरा बाहरी हिस्सों से दिल्ली तथा देश के अन्य अंदरूनी हिस्सों को देखना।

अगर आप भीतर से बाहर की ओर देखेंगे तो आपको निश्चित तौर पर तस्वीर पूरी तरह राष्ट्रीय पार्टी और राष्ट्रीय नेताओं से संदर्भित दिखेगी। अगर आप खुले दिमाग से और दूर से देखेंगे तो आपको इस नए भारत में बदलाव दिखेगा। राष्ट्रीय पार्टियों का पराभव हो रहा है। देशव्यापी राष्ट्रीय नेता की अवधारणा इंदिरा गांधी के साथ समाप्त हो गई है।

भारतीय राजनीति की इस मुखर हकीकत को पिछले दिनों दो सबसे मजबूत क्षेत्रीय क्षत्रपों तेलंगाना के के चंद्रशेखर राव (केसीआर) और वाईएस जगनमोहन रेड्डी ने अपने-अपने ढंग से दोहराया। उनका कहना था कि देश में अब राष्ट्रीय पार्टी जैसी कोई चीज नहीं है। जिन्हें राष्ट्रीय दल कहा जाता है यानी भाजपा और कांग्रेस, वे भी क्षेत्रीय हैं बस उनका विस्तार एकाधिक राज्यों में है।

राष्ट्रीय दल के रूप में कांग्रेस के पराभव को समझा जा सकता है लेकिन भाजपा को राष्ट्रीय दल क्यों नहीं कहा जा सकता? सन 2014 में उसने पूर्ण बहुमत भी हासिल किया था। इसे समझने के लिए दिल्ली से बाहर जाना होगा।

दिल्ली में रहकर हम हिंदी प्रदेश को ही देश समझ लेते हैं। भाजपा ने 2014 में जो 282 सीट हासिल की थीं उनमें से अधिकांश उत्तर प्रदेश, बिहार, मध्य प्रदेश, राजस्थान, छत्तीसगढ़, झारखंड, हरियाणा, दिल्ली, हिमाचल प्रदेश और उत्तराखंड (कुल 190) से हासिल की थीं। बाकी की सीटों में से 49 महाराष्ट्र और गुजरात जैसे पश्चिमी राज्यों में मिली थीं। यानी इन राज्यों की 299 में से 239 सीट पर भाजपा जीती थी। देश के शेष हिस्से यानी समूचे दक्षिण (कर्नाटक, केरल, आंध्र प्रदेश, तेलंगाना और तमिलनाडु), पूर्व (पूर्वोत्तर के राज्य, पश्चिम बंगाल और ओडिशा) और यहां तक कि सुदूर उत्तर में जम्मू कश्मीर तथा पंजाब की कुल मिलाकर 244 में से भाजपा को केवल 43 सीटों पर जीत मिली। यह परिदृश्य किसी राष्ट्रीय दल का तो नहीं है। यह 10 राज्यों वाला दल है जो इन राज्यों में अधिकतम सीट जीतकर बहुमत हासिल कर पाया।

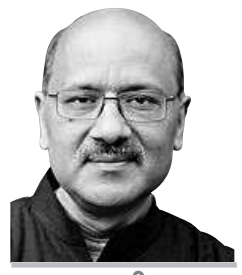

राष्ट्र की बात

शेखर गुप्ता

राष्ट्रीय नेताओं की बात करें तो आज केवल मोदी ही इसका दावा कर सकते हैं। उन्हें सब जानते हैं लेकिन क्या वह इन 10 राज्यों के बाहर अपने लिए वोट जुटा सकते हैं? इन 10 राज्यों में भी अधिकांश प्रमुख राज्यों में उनको स्थानीय दलों और नेताओं से चुनौती मिल रही है। उत्तर प्रदेश में मायावती और अखिलेश यादव के साथ वह आर-पार की लड़ाई लड़ रहे हैं।

बिहार में लालू प्रसाद और नीतीश कुमार इन नेताओं के समकक्ष हैं। कांग्रेस और भाजपा दोनों ने इनमें से एक-एक के साथ कनिष्ठ सहयोगी के रूप में गठबंधन किया है। पंजाब में भाजपा अकाली दल के साथ है, हरियाणा में भाजपा और कांग्रेस दोनों साझेदार तलाश रही हैं। भाषण कला में निपुण होने के बावजूद मोदी काल्पनिक तौर पर भी सात राज्यों से ज्यादा में अपनी पार्टी को जीत दिलाने की स्थिति में नहीं हैं। काल्पनिक इसलिए क्योंकि इनमें उत्तर प्रदेश शामिल है।

अगर भाजपा सात से नौ राज्यों वाला राष्ट्रीय दल है तो कांग्रेस के पास छह राज्य हैं। मध्य प्रदेश, राजस्थान, छत्तीसगढ़, केरल, पंजाब और कर्नाटक। पश्चिम बंगाल, ओडिशा, आंध्र प्रदेश, तेलंगाना, उत्तर प्रदेश और बिहार में पार्टी अस्तित्व के लिए संघर्षरत है। यही कारण है कि एकदम बेहतरीन किस्मत होने पर भी कांग्रेस 150 से अधिक सीट नहीं जीत सकती। मुझे पता है कि यह संभव नहीं लगता और शायद 100 सीटों का अनुमान भी आशावादी होगा। परंतु इससे यह साबित करने का लक्ष्य पूरा नहीं होता कि भाजपा 50 प्रतिशत तो कांग्रेस बमुश्किल एक तिहाई राष्ट्रीय पार्टी है। क्या आप किसी राज्य का नाम ले सकते हैं जहां राहुल गांधी अपने दम पर लोकसभा चुनाव का रुख बदलने की काबिलियत रखते हों।

सच यह है कि इंदिरा गांधी आखिरी राष्ट्रीय नेता थीं जो सभी राज्यों में जीत सकती थीं। उनके निधन के बाद दिसंबर 1984 के आम चुनाव को छोड़ दें तो कोई राष्ट्रीय नेता या राष्ट्रीय दल नहीं उभरा है। अब उनकी जगह ताकतवर और करिश्माई क्षेत्रीय और जातीय नेताओं ने ले ली है। इनमें से किसी को क्षेत्रीय नेता कहना भी एक छलावा होगा। उनको मिलने वाले वोट इसके गवाह हैं।

सन 1952 से 1977 के बीच मत हिस्सेदारी में 4 फीसदी से बढ़ते हुए क्षेत्रीय दल 2002-2018 के बीच 34 फीसदी तक आ गए। इन गर्मियों में इसमें और इजाफा होगा। चूंकि ये पार्टियां एक खास क्षेत्र में सीमित होती हैं इसलिए उन्हें मत प्रतिशत के हिसाब से सीट भी अधिक मिलती हैं। आज 34 फीसदी मतों के साथ ये पार्टियां 34 प्रतिशत लोकसभा सीट जीतती हैं। हर बढ़ते प्रतिशत के साथ उन्हें 11 और सीट मिलेंगी जबकि राष्ट्रीय दलों को केवल सात। मैंने ये आंकड़े प्रणय रॉय और दोराब सुपारीवाला की किताब द वरडिक्ट से लिए हैं।

अविभाजित आंध्र प्रदेश में कांग्रेस की मत हिस्सेदारी पारंपरिक रूप से 40 फीसदी के करीब रही है। नए बने राज्य में घटकर 3 फीसदी रह गई। भाजपा के पश्चिम बंगाल और ओडिशा में बढ़ते प्रभाव के दावों की परीक्षा जल्दी हो जाएगी। असम और त्रिपुरा को छोड़कर उसने कोई नया राज्य नहीं जीता है, भले ही बहुमत मोदी के साथ हो और भाजपा के पास 10 करोड़ से अधिक सदस्य हों।

भारत में आज करीब 20 ऐसे नेता हैं जो सीमित भौगोलिक या राजनीतिक क्षेत्र में इतने ताकतवर हैं कि मोदी समेत कोई उनके वोट छीन नहीं सकता। उनमें से अधिकांश के पास प्रशासनिक और राजनीतिक अनुभव है और विभिन्न क्षेत्रों तक उनका नेटवर्क फैला है। उनकी चिंताएं और विचारधारा अलग हो सकती हैं लेकिन राष्ट्रीय दलों का वर्चस्व खत्म करने के नाम पर वह एकजुट हैं।

दिल्ली और हिंदी प्रदेश के बाहर एक प्रगतिशील दुनिया है जो हमारे बुर्जुआ वर्ग की उस असुरक्षा से दूर है कि अगर मोदी नहीं जीते तो देश में खिचड़ी सरकार बनेगी। दक्षिण और पूर्वी भारत में आपको यह चिंता सुनने को नहीं मिलेगी कि मोदी नहीं तो कौन? बीते तीन दशक में कांग्रेस कमजोर हुई है और भारत सही अर्थों में एक संघीय गणराज्य बना है। राष्ट्रीय चुनाव का स्थान राज्यों में होने वाले 30 चुनावों ने ले लिया है। कोई ऐसा दल नहीं है जिसका इनमें से कम से कम एक तिहाई राज्यों में दबदबा हो। भाजपा और कांग्रेस मिलकर आधे राज्यों में भी दबदबा नहीं रखते।

हिंदी प्रदेश की राजनीति में टीना (कोई विकल्प नहीं) तत्त्व क्यों हावी है और इसके बाहर यह निष्प्रभावी क्यों है? एक अहम वजह यह है कि जिन राज्यों में कांग्रेस और भाजपा अपने रसूख के लिए लड़ रही हैं वहां कोई सच्चा क्षेत्रीय नेता नहीं उभरा है। बिहार और उत्तर प्रदेश में लालू, नीतीश, मायावती और अखिलेश बड़े नेता हैं लेकिन उनकी अपनी सीमाएं हैं। भाजपा उन्हें चुनौती देती है या साथ आने को मजबूर करती है। महाराष्ट्र, गुजरात, मध्य प्रदेश और राजस्थान जैसे बड़े राज्यों में अभी भी बड़े दल प्रभावी हैं। कुछ हद तक कर्नाटक में भी।

दूसरी वजह यह कि राष्ट्रीय दल मजबूत क्षेत्रीय नेतृत्व तैयार करना पसंद नहीं करते। कांग्रेस ने आंध्र प्रदेश में में स्वाभाविक उत्तराधिकारी को पनपने न देकर आत्महत्या कर ली। हेलीकॉप्टर दुर्घटना में जगनमोहन रेड्डी के पिता के निधन के बाद पार्टी ने उन्हें सामान्य इज्जत भी नहीं दी। कांग्रेस में कैप्टन अमरिंदर सिंह के रूप में एक ही महत्त्वपूर्ण क्षेत्रीय नेता है। भाजपा के पास योगी आदित्यनाथ के रूप में एक अधूरा क्षेत्रीय नेता है। शिवराज सिंह चौहान, वसुंधरा राजे और रमन सिंह को दरकिनार कर दिया गया है। भारतीय राजनीति दिलचस्प मोड़ पर है जहां कोई राष्ट्रीय नेता या दल नहीं है और हिंदी प्रदेश के बाहर गठबंधन को लेकर असुरक्षा कम हो रही है। जैसा हमने 2014 में देखा अगर कोई दल आपस में जुड़े राज्यों में 200 सीटें जीत लेता है तो वह अब भी बहुमत हासिल कर सकता है।

इन चुनावों में कोई हवा नहीं बह रही है। हम भरोसे के साथ यह कह सकते हैं कि यह चुनाव अलग-अलग राज्य के आधार पर लड़ा जाएगा, काफी हद तक 2004 की तरह। मुझसे यह मत पूछिए कि अगले गठबंधन का नेता कौन होगा। मैं बस यह कह सकता हूं कि अगली सरकार का नेतृत्व कोई भी करे लेकिन यह ऐसा मंत्रिमंडल होगा जहां राम विलास पासवान भी अपनी बात कह सकेंगे।

जीएसटी के बाद भी व्याख्या संबंधी कुछ मसले बाकी

कराधान

सुकुमार मुखोपाध्याय

भले ही जीएसटी ने कर नियमों की व्याख्या से संबंधित कई विवाद खत्म कर दिए हैं लेकिन कुछ मसले अब भी करदाताओं को प्रभावित कर रहे हैं।

वस्तु एवं सेवा कर (जीएसटी) के 1 जुलाई 2017 को लागू होने के पहले देश में केंद्रीय उत्पाद शुल्क में कर दरों की विविधता होती थी जिससे वर्गीकरण को लेकर बेहद विवादास्पद स्थिति पैदा हुई। इससे नियमों की व्याख्या करने की अक्सर जरूरत पड़ने लगी और मामले अदालतों तक जाने लगे। कर नियमों की व्याख्या से संबंधित तमाम अदालती फैसले कानूनी किताबों में दर्ज होने लगे।

अब भारत में जीएसटी की केवल दो दरें-12 फीसदी और 18 फीसदी ही ऐसी हैं जिन्हें लेकर वर्गीकरण की समस्या पैदा होगी। ऐसा होने पर एक बार फिर नियमों की व्याख्या का मसला कुछ हद तक खड़ा होने के आसार बने हुए हैं।

यहां मैं व्याख्या से जुड़ी कुछ समस्याओं पर चर्चा कर रहा हूं जो आगे नहीं भी जारी रह सकती हैं। हालांकि मैं यह दावा नहीं करता कि आगे चलकर व्याख्या से संबंधित ऐसे मामले सामने ही नहीं आएंगे जिन्हें अदालत में चुनौती दी जाए। हालांकि मध्यवर्ती उत्पादों की कराधान क्षमता के मामले में व्याख्या का मसला आगे भी जारी रहने के आसार नहीं है। पहले, एक मध्यवर्ती उत्पाद की श्रेणी निर्धारित करने का भी सवाल खड़ा होता था। इसमें यह तय करना होता था कि किसी कारखाने में तैयार होने वाले किसी उत्पाद के उत्पादन में लगने वाले कच्चे माल के तौर पर लगने वाला उत्पाद है या नहीं। हालांकि मध्यवर्ती उत्पाद कभी भी पूरी तरह तैयार अंतिम उत्पाद नहीं होता है।

इस सवाल पर विचार करते समय सबसे अहम बिंदु यह होता था कि कथित उत्पाद पर केंद्रीय उत्पाद शुल्क लगेगा या नहीं। इसके लिए उस उत्पाद को बेचने की क्षमता (मार्केटेबिलिटी) अहम कारक होती थी। हालांकि मार्केटेबिलिटी के मसले पर कई बार उच्चतम न्यायालय के निर्णय भी आ चुके हैं। इन फैसलों का सार यह था कि उत्पाद अगर बिक्री लायक होते हुए भी वास्तव में नहीं बेचे जा रहे हैं तो भी उन्हें बिक्री-योग्य माना जाएगा। यह स्थिति तलवार की धार पर चलने की तरह था। जीएसटी आने के बाद वह स्थिति सुधरी है क्योंकि अब विनिर्माता नहीं बल्कि आपूर्ति के स्तर पर करारोपण का प्रावधान है।

अगर मध्यवर्ती उत्पादों पर शुल्क लगता भी है तो वे इनपुट क्रेडिट पाने के हकदार होंगे, लिहाजा उन पर राजस्व पहलू शामिल नहीं है। सिद्धांत तौर पर पुरानी स्थिति में कोई बदलाव नहीं आया है लेकिन इस पर विवाद होने की स्थिति खत्म कर दी गई है।

व्याख्या से संबंधित एक और विवादास्पद मुद्दा कई तरह के कार्य संपादित करने वाली मशीनों के वर्गीकरण से संबंधित था। उच्चतम न्यायालय ने जेरॉक्स इंडिया लिमिटेड बनाम सीमा-शुल्क आयुक्त मामले में इससे संबंधित फैसला सुनाया था। मामला एक मल्टी-फंक्शनल मशीन के वर्गीकरण से जुड़ा हुआ था जो प्रिंटर, फैक्स मशीन, कॉपियर और स्कैनर के तौर पर भी काम कर सकती है। आयातक फर्म इस मशीन को उत्पाद समूह 8471 में शामिल कराना चाहता था जिस पर शून्य शुल्क लगता है। इस उत्पाद में ऑटोमेटिक डेटा प्रोसेसिंग करने वाली मशीनें लगती हैं, लिहाजा मशीन में समेकित इनपुट और आउटपुट इकाइयां शामिल हैं। राजस्व विभाग इस मशीन को अवशिष्ट उत्पाद समूह 8479 में शामिल करना चाहता था जिसमें अन्यत्र निर्दिष्ट कार्य करने वाली मशीनें रखी जाती हैं। इस समूह के उत्पादों पर 7.5 फीसदी शुल्क लगता है।

आयातक की दलील थी कि इस मशीन के साथ इनपुट और आउटपुट इकाई के तौर पर कंप्यूटर लगा होता है। उच्चतम न्यायालय ने इस बात को ध्यान में रखा कि इस मल्टी-फंक्शनल मशीन के कुल उपकरणों एवं पुर्जों का करीब 85 फीसदी हिस्सा प्रिंटिंग में ही इस्तेमाल होता है। यह स्पष्ट रूप से बताता है कि मशीन का मुख्य कार्य प्रिंटिंग ही है और इससे उस मशीन के बुनियादी चरित्र का पता चलता है। सर्वोच्च न्यायालय ने यह माना कि प्रिंटर के 8471 उत्पाद समूह में शामिल होने से जेरॉक्स मशीन को प्रिंटर के मद में रखना न्यायोचित है।

इस तरह के विवाद खड़े होने की आशंका अब भी कायम है। खास तौर पर मशीनों के मामले में ऐसा होने की आशंका अधिक है। मशीनरी से संबंधित अध्यायों- 84 और 85 में 12 और 18 फीसदी की केवल दो दरें ही होने से विवाद की आशंका बरकरार है। इसका मतलब है कि जीएसटी आने पर भी कोई मदद नहीं मिली है।

एक और मसला अवशिष्ट शुल्क से संबंधित था। उच्चतम न्यायालय ने इस विषय पर दिए गए अपने कई फैसलों में यही सिद्धांत रखा था कि किसी सीमा शुल्क इंट्री में अगर कई सब-इंट्री हैं तो वर्गीकरण उस सब-इंट्री में ही होना चाहिए और केवल अंतिम विकल्प के ही तौर पर 'अन्य' श्रेणी में रखा जाना चाहिए। वह समस्या अब भी बरकरार है। निहितार्थ यह है कि भले ही जीएसटी ने कर नियमों की व्याख्या से संबंधित कई विवाद खत्म कर दिए हैं लेकिन कुछ मसले अब भी करदाताओं को प्रभावित कर रहे हैं।

(लेखक केंद्रीय उत्पाद एवं सीमा शुल्क बोर्ड के पूर्व सदस्य हैं)

कानाफूसी

अंत भला तो सब भला

पिछले दिनों कांग्रेस पार्टी का चुनावी घोषणापत्र जारी होने के बाद हर किसी ने उसके बारे में अपनी राय जाहिर की है। इस बीच एक बात जो सुर्खियों में रही वह यह थी कि संयुक्त प्रगतिशील गठबंधन (संप्रग) की अध्यक्ष सोनिया गांधी पार्टी के चुनावी घोषणापत्र से प्रसन्न नहीं थीं। कुछ ही दिन में यह सच भी सामने आ गया कि उनकी नाराजगी की वास्तविक वजह क्या थी। दरअसल वह आवरण पृष्ठ के गहरे रंग को लेकर नाखुश थीं। जब उन्हें बताया गया कि इसे तैयार करने वाली टीम आवरण पृष्ठ पर आम जनता की तस्वीर शामिल करना चाहती थी तो भी वह इस स्पष्टीकरण से संतुष्ट नहीं नजर आईं। परंतु वहां से जाने से पहले उन्होंने टीम से क्षमा प्रार्थना की और कहा कि वह साल भर की कड़ी मेहनत से तैयार किए गए इस दस्तावेज की आलोचना करने के लिए माफी चाहती हैं। इसके बाद घोषणापत्र तैयार करने वाली टीम को कांग्रेस के राष्ट्रीय अध्यक्ष राहुल गांधी का लिखा हुआ एक नोट मिला। उन्होंने घोषणापत्र में झलक रही टीम की मेहनत की जमकर सराहना की थी। इस बात ने टीम को खुशियों से भर दिया।

आपका पक्ष

सभी को स्वास्थ्य सुविधा का लक्ष्य

विश्व स्वास्थ्य संगठन द्वारा हर वर्ष 7 अप्रैल को लोगों में स्वास्थ्य के प्रति जागरूकता के लिए विश्व स्वास्थ्य दिवस मनाया जाता है। इस वर्ष संगठन द्वारा यूनिवर्सल हेल्थ कवरेज का यह लक्ष्य रखा गया है कि दुनिया का हर व्यक्ति बिना किसी परेशानी के गुणवत्तापूर्ण स्वास्थ्य सेवाओं का लाभ उठा सके। विश्व स्वास्थ्य संगठन के मुताबिक आज भी लाखों लोग गुणवत्तापूर्ण स्वास्थ्य सेवा लेने से वंचित हैं। लाखों लोग स्वास्थ्य देखभाल और अन्य दैनिक खर्चों जैसे भोजन, कपड़े और एक घर के बीच चयन करने के लिए मजबूर हैं। इसलिए विश्व स्वास्थ्य संगठन ने इस वर्ष यूनिवर्सल हेल्थ कवरेज पर ध्यान केंद्रित किया है। इस अभियान के माध्यम से संगठन द्वारा यूनिवर्सल हेल्थ कवरेज का अर्थ लोगों को समझाया जाएगा। इसके तहत किस तरह की सेवा तथा कैसी सहायता, कहां मिलनी चाहिए

विश्व स्वास्थ्य संगठन द्वारा हर वर्ष 7 अप्रैल को विश्व स्वास्थ्य दिवस मनाया जाता है

लोगों को इस बारे में बताया जाएगा। विश्व स्वास्थ्य दिवस के दिन विश्व स्वास्थ्य संगठन, स्वास्थ्य से संबंधित वार्षिक आंकड़ा जारी करती है जिससे स्वास्थ्य से संबंधित पहलुओं को समझने में आसानी होगी तथा स्वस्थ संबंधित नीतियां बनाने में यह रिपोर्ट सहायक होगी। इसमें नवजात शिशु और बाल स्वस्थ, गैर-संक्रामक रोगों, मानसिक स्वास्थ्य और पर्यावरणीय जोखिमों से संबंधित जानकारी शामिल है। इस रिपोर्ट में यूनिवर्सल हेल्थ कवरेज और स्वास्थ्य प्रणालियों के आंकड़े भी शामिल है। यूनिवर्सल हेल्थ कवरेज को अच्छे तरीके से लागू करने के लिए सितंबर 2019 में संयुक्त राष्ट्र महासभा में उच्चस्तरीय बैठक भी होनी है। आज यूनिवर्सल हेल्थ कवरेज को व्यापक रूप से इसलिए भी लागू करना जरूरी है क्योंकि अधिकतर देशों के प्रति व्यक्ति आय मध्य और निम्न स्तर की है और वे गुणवत्तापूर्ण स्वास्थ्य सुविधाएं लेने में सक्षम नहीं हैं। इससे लोगों के जीवन पर ही नहीं बल्कि देश की अर्थव्यवस्था पर बुरा असर पड़ता है। एक बीमार व्यक्ति अपनी कार्यक्षमता के अनुरूप काम नहीं कर सकता। स्वास्थ्य का अधिकार यह प्रत्येक व्यक्ति का अधिकार है इसलिए यूनिवर्सल हेल्थ कवरेज को प्राथमिकता देकर इसे लागू कराना जरूरी है।

निशांत महेश त्रिपाठी, नागपुर

बढ़ रही गर्मी, जल संरक्षण जरूरी

गर्मी का मौसम आ चुका है तथा हर साल गर्मियों में पानी की किल्लत हो जाती है। अभी से हमें जल संरक्षण पर ध्यान देना चाहिए। देश में सूखे की स्थिति बनने से पहले ही हमें जल संचयन कर लेना चाहिए। हर साल गर्मी में टैंकरों से पानी की आपूर्ति की जाती है। सरकार इसका वैकल्पिक उपाय निकाल सकती है। पानी की कमी वाले क्षेत्रों में वॉटर हार्वेस्टिंग कर बोरवेल लगाया जा सकता है। इससे प्रचंड गर्मी पड़ने पर भी पानी की कमी नहीं होगी। लोगों को भी अभी से कम पानी खर्च करने की आदत डालनी चाहिए जिससे पानी का दुरुपयोग रोका जा सके। विगत सालों में महाराष्ट्र के कुछ जिलों में पानी की कमी पड़ गई थी जिसके बाद ट्रेन से पानी पहुंचाया गया था। इस साल पानी की कमी से निपटने के लिए सरकार को पहले ही कमर कस लेनी चाहिए।

मोहित कुमार, नई दिल्ली

पाठक अपनी राय हमें इस पते पर भेज सकते हैं : संपादक, बिजनेस स्टैंडर्ड लिमिटेड, 4, बहादुर शाह जफर मार्ग, नई दिल्ली - 110002. आप हमें ईमेल भी कर सकते हैं : lettershindi@bsmail.in उस जगह का उल्लेख अवश्य करें, जहां से आप ईमेल कर रहे हैं।